International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030; Impact Factor: RJIF 5.24
Received: 03-03-2019; Accepted: 06-04-2019
www.advancedjournal.com
Volume 4; Issue 3; May 2019; Page No. 30-33

मनुस्मृति में राजनैतिक शिक्षण

डॉ0 विनी शर्मा
सहायकाचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर, जयपुर, राजस्थान, भारत।

सारांश
धर्मशास्त्र को धर्मसूत्र के एक रूप में माना गया है तथा इसके अन्तर्गत सभी कानून, साहित्य, राजशास्त्र को समाहित किया गया है। धर्मसूत्रों का विकास विभिन्न स्मृतियों में हुआ जिसका स्रोत विभिन्न श्लोकों में मिलता है। प्राचीनतम स्मृतियों में मनुस्मृति का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। मनु भारत के प्रथम प्रमुख राजशास्त्री एवं विधि संहिताकार है। उन्होंने अपनी मनुस्मृति में राजतंत्र के प्रजापालक स्वरूप पर बल दिया और राज्य को प्रजा हितकारी संस्था के रूप में मान्यता दी। राजनीतिक, आर्थिक एवं न्यायिक प्रशासन के विभिन्न पक्षों को भलीभांति उल्लेख किया है। मनु ने कानून अर्थात् विधि–विधान के चार स्रोतों की चर्चा की है – प्रथम शाश्वत कानून सार्वजनिक है, वेद साहित्य इसका स्रोत है, द्वितीय स्मृति पर बना कानून श्रुतियों पर आधारित कानून होता है, तृतीय कानून आचरण पर आधारित कानून है जो अपने स्वरूप में नैतिक होता है तथा चतुर्थ प्रकार मनु द्वारा निर्मित कानून है अर्थात् वह कानून जो आत्म अर्थात् अन्तःकरण के अनुरूप होता है। मनु ने धर्म को समस्त कानूनों का स्रोत बताया है। मनु ने मानव जीवन को उन्नत प्रगतिशील और राष्ट्र–रक्षा, राजधर्म और मानव धर्म के मापदण्डों के द्वारा राष्ट्र को सबल और सुव्यवस्थित बनाने का राजनैतिक शिक्षण प्रदान किया है। मनु ने राजधर्म का सर्वोत्कृष्ट शिक्षण मनुस्मृति में उल्लेख किया है। राजधर्म में सभी के हितों का विशेष तौर पर ध्यान रखा गया है।

मूल शब्द : मनुस्मृति, राजधर्म, स्मृति, दण्ड, सप्तांग, मण्डल, षाड्गुण्य, उपाय, शक्ति–सन्तुलन, दूत, गुप्तचर, अष्टांग योग, सहिष्णुता, दैविय, अनुपम, अद्वितीय, शिक्षण, राजनीतिक, सामाजिक इत्यादि।

प्रस्तावना
मनुस्मृति हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मशास्त्र (स्मृति) है। इसे मानव धर्मशास्त्र, मनु संहिता आदि नामों से भी जाना जाता है। यह उपदेश के रूप में है जो मनु द्वारा ऋषियों को दिया गया। मनुस्मृति वह धर्मशास्त्र है जिसकी मान्यता जग विख्यात है। न केवल भारत में ही अपितु विदेश में भी इसके प्रमाणों के आधार पर निर्णय होते रहे हैं और आज भी होते हैं। अतः धर्मशास्त्र के रूप में मनुस्मृति को विश्व की अमूल्य निधि माना जाता है। भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन 'मनुस्मृति' का ही है।

मनुस्मृति पर अनेकों औपनिवेशिक विद्वानों, आधुनिक उदारवादियों, हिन्दू सुधारकों, दलित प्रवक्ताओं, नारीवादियों तथा मार्क्सवादियों अर्थात् कम्युनिस्टों ने समय–समय पर आलोचनात्मक प्रहार किए हैं। मनुस्मृति 12 अध्यायों में विभक्त है और 2694 श्लोक है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्त्तव्य, विभिन्न प्रकार के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होती है। मनुस्मृति की गणना विश्व के ऐसे ग्रन्थों में की जाती है जिनसे मानव ने वैयक्तिक आचरण और समाज रचना के लिए प्रेरणा प्राप्त की है। मनुस्मृति वह आधारशिला है जिसके ऊपर मिश्र, परसिया, ग्रेसियन और रोमन कानून संहिताओं का निर्माण हुआ। प्रो0 बी.आर. मेहता ने प्राचीन भारतीय समाज में मानी जाने वाली मान्यताओं के विषय में लिखा है कि मनु को मानव जाति का प्रथम शिक्षण कहा गया है।[1] राजनीतिक व सामाजिक चिंतन के स्रोत के रूप में मनुस्मृति का विशेष महत्व है।

मनुस्मृति का सातवां अध्याय राजधर्म विषय पर केन्द्रित किया गया है। विश्व की वर्तमान दुर्दशा को सुधारने के लिए मनुस्मृति का यह अध्याय अनुपम और अद्वितीय है। इस अध्याय में राजधर्म की ऐसी सुंदर व्यवस्था विश्व के किसी भी संविधान या विधि–विधान में नहीं की गयी है। उन्होंने राजा, मंत्री, सभासद्, प्रजा तथा इन पर प्रयुक्त होने वाले दण्ड विधान, कर व्यवस्था का बहुत ही व्यवस्थित अध्ययन किया है, जिनका निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया है।

1. राजा
मनु ने राजा की उत्पत्ति के संबंध में जो विवरण मिलता है, उससे यह सहज ही अनुमान होता है कि मनु ने राजा की दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनु के अनुसार इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्र तथा कुबेर के दिव्य गुणों को लेकर राजा की सृष्टि की है।[2] मनु ने आगे लिखा है कि इस संसार में राज्य के न होने पर बलवानों के डर से, प्रजाओं में व्याप्त असुरक्षा के कारण, सम्पूर्ण संसार की रक्षा के लिये ईश्वर ने राजा की सृष्टि की।[3] अर्थात् मनु जिस राजा का सृजन करता है, वह सम्प्रभु शक्ति का प्रतीक है जिसे मनुषयें द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती।

मनुस्मृति में राजा की दिव्यता के विचार को राजा की शक्ति के रूप में नहीं, अपितु उसके दायित्वों के रूप में व्यक्त करते हुए दिव्य व्रतों की संज्ञा दी है तथा राजा से इन दायित्वों को निर्वाह करने की अपेक्षा की है। मनु का कहना है कि ''जैसे इन्द्र वर्षा करता है, उसी प्रकार राजा को इन्द्र–व्रत का पालन करते हुए जनता पर समृद्धि और कल्याण की वर्षा करनी चाहिए।[4] जिस प्रकार सूर्य आठ मासों में किरणों के द्वारा जल ग्रहण करता है, किन्तु बदले में वह समस्त संसार को तेज और प्रकाश द्वारा जल का हरण करता है, किन्तु बदले में वह समस्त संसार को तेज और प्रकाश से लाभान्वित करता है, इसी प्रकार राजा को सूर्य–व्रत का पालन करते हुए प्रजा के कल्याण के दायित्व की पूर्ति के लिए प्रजा से कर–ग्रहण करना चाहिए।[5] जिस प्रकार वायु सब प्राणियों में प्रवेश कर विचरण करती है, उसी प्रकार राजा को वायु–व्रत का पालन करते हुए गुप्तचरों के माध्यम से

सर्वत्र प्रवेश करना चाहिए।[6] जिस प्रकार यमराज समय आने पर प्रिय व अप्रिय सबके प्राण ले लेता है, उसी प्रकार राजा को यम–व्रत का पालन करते हुए अपराध करने पर प्रिय–अप्रिय सभी को दण्डित करना चाहिए।[7] जिस प्रकार बन्धन के योग्य पुरुष वरूण के पाश में कठोरता से बंध जाता है, उसी प्रकार वरूण–व्रत को धारण करते हुए राजा की विधि के उल्लंघन–कर्त्ताओं का निग्रह करना चाहिए।[8] जिस प्रकार परिपूर्ण चन्द्रमा को देखकर मनुष्य हर्षित होते हैं उसी प्रकार चन्द्रव्रत को धारण किए हुए राजा को ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि प्रजा एवं सभी प्रकृतियाँ उसे देखकर हर्षित हो।[9] अग्नि–व्रत को धारण करते हुए राजा को अग्नि की भांति प्रचण्ड तथा असह्य तेज को धारण किये हुए, अपराधियों व दुष्ट मंत्रियों आदि का वध करना चाहिए।[10] जिस प्रकार पृथ्वी सब प्राणियों को समान भाव से धारण करती है, उसी प्रकार पृथ्वी–व्रत का पालन करते हुए राजा को समस्त प्रजा का समान रूप से पालन करना चाहिए।[11] अतः स्पष्ट है कि राजा की सत्ता अति मानवीय व दिव्य मानते हुए इस दिव्यता को शासक के लोक कल्याणकारी दायित्वों की पवित्रता के रूप में परिभाषित किया गया है।

2. धर्म व दण्ड

मनु ने दण्ड शब्द का प्रयोग तीन विशेष अर्थों में किया है – राज्य की सर्वोच्च शक्ति (सम्प्रभुता), सेना तथा अपराधी को दी जाने वाली सजा। मनुस्मृति में राज्य को, धर्म पर आधारित उद्देश्यपूर्ण संस्था के रूप में दर्शाया गया है। धर्म के अन्तर्गत नैतिक मूल्य, सदाचार के शाश्वत सिद्धान्त, सामाजिक व्यवस्था के नियम, प्रजा के कल्याण के प्रति शासक के सकारात्मक दायित्वों तथा शासकीय शक्ति का प्रयोग करते समय शासक से अपेक्षित मर्यादाओं आदि को शामिल किया गया है।

मनुस्मृति में दण्ड को सर्वोपरि सत्ता स्वीकार किया गया है। मनु ने राजा को दण्ड का स्वामी नहीं, अपितु अभिकर्त्ता मात्र मानती है जो कि धर्म के सिद्धान्तों और विधि की प्रक्रिया के अधीन रहते हुए, निश्चित प्रयोजन के लिए दण्ड का उपयोग करता है। मनु ने स्पष्ट किया कि राजा द्वारा धर्म के विरूद्ध दिया गया दण्ड लोक में उसकी अपकीर्ति का और परलोक उसके नरकगमन का कारण बनता है।[12] मनु ने राजा के लिए स्पष्ट चेतावनी दी है कि दण्ड का दुरूपयोग करने पर यह दण्ड ही स्वयं राजा को नष्ट कर देगा।[13] अर्थात् राजा दण्ड की सम्प्रभु शक्ति के अधीन है। मनु ने इस बात पर बल दिया है कि राजा को प्रिय एवं अप्रिय के भेद को त्याग कर यमराज के समान सर्वत्र समान व्यवहार करते हुए इस शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।[14]

3. राज्य का सप्तांग सिद्धान्त

मनु ने राज्य को एक ऐसी संस्था माना है जिसका निर्माण सात तत्वों से मिलकर होता है। इसलिए उन्होंने राज्य संस्था को 'सप्तांग–राज्य' कहा है। मनु के अनुसार राज्य का निर्माण स्वामी (राजा), मंत्री, पुर (दुर्ग), राष्ट्र, कोश, दण्ड तथा मित्र नामक अंगों से होता है। मनु ने इन अंगों को 'राज्य की प्रकृति' कहा है।[15] मनु ने राज्य की सातों प्रकृतियों के संदर्भ में कहा कि ये सातों प्रकृतियां एक–दूसरे के सहारे ठीक उसी प्रकार टिकी होती है, जिस प्रकार तीन डण्डे एक–दूसरे के सहारे खड़े रहते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि इन सातों में से किसी की अहमियत कम है। वास्तविकता तो यह है कि इन सातों की समग्र स्थिति में ही राज्य सुरक्षित व स्थिर रहकर समृद्ध बनता है।[16]

मनु ने आगे कहा है कि जिस कार्य–विशेष की सिद्धि किसी भी प्रकृति–विशेष से होना संभव होता है, उस प्रकृति को उस विशिष्ट कार्य के संदर्भ में श्रेष्ठतम माना जाना चाहिए।[17]

4. राज्य का कार्यक्षेत्र

मनु ने राज्य के कार्यक्षेत्र का व्यवस्थित और विस्तृत विवेचन किया है। मनुस्मृति में प्रजा रक्षण का कार्य राज्य का प्रमुख दायित्व माना गया है। मनु ने कहा है कि जिस तरह खेती करने वाला किसान धान्य की रक्षा हेतु खरपतवार को उखाड़ फेंक देता है, उसी प्रकार राजा को राष्ट्र की रक्षा हेतु विरोधियों का समूल नाश कर देना चाहिए।[18] मनु ने प्रजा के लिए चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की स्थापना को राज्य के महत्वपूर्ण दायित्वों में सम्मिलित किया है।[19] मनु ने राज्य का कर्त्तव्य माना है कि वह अप्राप्त (धन एवं भूमि) को प्राप्त करे, जो प्राप्त हो उसकी रक्षा करे, रक्षित की हर सम्भव प्रयास द्वारा वृद्धि करे एवं होने वाली अभिवृद्धि का सुपात्रों में वितरण कर दे।[20]

मनु ने व्यक्ति के जीवन में अर्थ को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है तथा प्रजा की भौतिक और आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करना राज्य का कर्त्तव्य माना है। मनु ने राजा से यह अपेक्षा की है कि वह प्रजा से न्यायपूर्वक कर ग्रहण करे तथा सम्पत्ति व समृद्धि के अन्य साधनों की रक्षा के प्रति प्रजा को आश्वस्त करे। मनु ने राज्य की सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था के हित में शासक से, प्रजा से उसकी सामर्थ्य के अनुसार कर लेने तथा प्रजा पर करों का अनावश्यक भार न डालने का परामर्श दिया है।[21]

मनु ने सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन के लिए कहा है कि राज्य का दायित्व है कि वह दण्ड की बाध्यकारी शक्ति के माध्यम से समाज में समस्त व्यक्तियों को स्वधर्म पालन हेतु बाध्य करे, नहीं तो पूरे जगत में उपद्रव फैल सकता है।[22] मनु ने न्याय व्यवस्था को राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य मानते हुए कहा है कि न्याय व्यवस्था नीति तथा धर्म पर आधारित होनी चाहिए। राज्य को निष्पक्षता से न्याय करना चाहिए। नागरिकों में सुरक्षा की भावना का संचार हो।[23]

मनु ने एक सक्षम और संगठित प्रशासनिक व्यवस्था को अनिवार्य माना है और साथ ही राजा को परामर्श दिया है कि प्रशासन व्यवस्था पर समुचित नियंत्रण बनाये रखे। मनु ने राजा का एक महत्वपूर्ण कार्य आवश्यक कार्यों में सम्मिलित किया है, वह है पर–राष्ट्र सम्बन्ध। मनु के अनुसार पर–राष्ट्र सम्बन्धों में शासक युक्ति और विवेक के प्रयोग द्वारा यह सुनिश्चित कर सकता है कि राज्य अनावश्यक युद्धों में न उलझे।

5. मंत्रि–परिषद्

मनु ने कहा कि मंत्रि–परिषद् राज्य–कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनिवार्य होती है तभी राजा धर्म–दण्ड का उचित प्रयोग कर सकता है। मंत्रिपरिषद् की महत्ता का स्पष्टीकरण करते हुये मनु–स्मृति में कहा गया है कि सहज कार्यों को करने के लिए भी व्यक्ति के लिए सहायकों का होना आवश्यक होता है। अतः महान उत्तरदायित्वों से युक्त राज्य–कार्य का अकेले राजा के द्वारा सम्पादित किया जाना तो किसी प्रकार संभव नहीं है।[24] मनु ने शासक को परामर्श दिया है कि वह राजकार्य के सुचारू निर्वाह हेतु सात–आठ मंत्रियों की नियुक्ति करे व उनके परामर्शों की सहायता से राजकार्यों को सम्पन्न करे।[25]

6. शासक पर नियंत्रण

मनु ने शासक की निरंकुशता के विचार का समर्थन नहीं किया। मनु ने अनेक भौतिक और व्यवहारिक कार्यों से शासक की शक्तियों को नियंत्रित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की है। मनु ने शासक को धर्म के अधीन माना है। यही कारण है कि राजकीय कर्त्तव्यों की सैद्धान्तिक मीमांसा को मनु ने अपने ग्रंथ में 'राजधर्म' के नाम से परिभाषित किया है। मनु के अनुसार राजधर्म की अवहेलना करने से शासक देवत्व से गिर जाता है।[26] मनु ने

आगे कहा कि ''दण्ड ही समस्त प्रजा पर शासन करता है, जब प्रजा सोती है, तो दण्ड जागता है, चोर दण्ड के भय से चोरी नहीं करते। धार्मिक कार्यों का सम्पादन भी दण्ड के भय से ही किया जाता है, अतः दण्ड को धर्म माना जाता है।''[27] मनु ने स्मृति में कहा है कि ''अपराध के अनुरूप दिया गया दण्ड प्रजा को स्वधर्म हेतु प्रेरित करता है जबकि अविवेकपूर्ण रीति से दिया गया दण्ड शासक को बान्धवों सहित नष्ट कर देता है।''[28]

मनु ने शासक पद संस्थागत नियंत्रण की चर्चा अपनी स्मृति में की है। मनु ने कहा है कि राजा के लिए मंत्रियों एवं अन्य शासकीय अभिकरणों से मंत्रणा करना अत्यावश्यक है। मंत्रणा की अनिवार्यता के माध्यम से मनु ने शासक के अधिकारों को प्रतिबंधित किया है। मनुस्मृति में स्थानीय प्रशासन के संदर्भ में भी शासक को अपरिमित अधिकार नहीं दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में मनु ने एक निश्चित व्यवस्था का प्रतिपादन किया है व उसके सम्पादन हेतु अध्यक्षों एवं मंत्रियों की नियुक्ति पर बल दिया है।[29] मनु ने राष्ट्र के प्रशासन के लिये उसका छोटी इकाइयों में विभाजन तथा शासकीय शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक माना है। मनु की मान्यता है कि शासन की शक्तियों एवं कर्त्तव्यों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से शासक की निरंकुशता एवं स्वच्छाचारिता पर प्रभावी अंकुश रखा जा सकता है। अतः मनु ने अपने ग्रंथ में राजा पर अनेक नैतिक और संस्थागत नियंत्रण के माध्यम से राजा को निरंकुश होने पर प्रतिबंध लगाये हैं।

7. पर–राष्ट्र नीति

पर–राष्ट्र सम्बन्ध का अर्थ है स्वयं के राज्य का अन्य राज्यों के साथ सम्बन्धों के स्वरूप का अध्ययन। आधुनिक समय में हम पर–राष्ट्र सम्बन्ध को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और विदेश नीति से सम्बन्धित मानते हैं। मनु ने पर–राष्ट्र सम्बन्धों को मण्डल सिद्धान्त के संदर्भ में समझाने का प्रयत्न किया है। मण्डल सिद्धान्त का मूल मंत्र यह है कि एक सफल शासक को सदैव शत्रुओं की संख्या को कम से कम एवं मित्रों की संख्या को अधिक से अधिक रखने का प्रयास करना चाहिए। अतः मण्डल सिद्धान्त शक्ति–सन्तुलन का व्यावहारिक स्वरूप ही है।

मनु ने विजीगिषु (अर्थात् विजय चाहने वाला) राजा को राज्य मण्डल का केन्द्रस्थ माना है। राष्ट्र मण्डल के अन्य राज्यों की गणना विजीगिषु के संदर्भ में की गई है – मित्र, शत्रु, उदासीन एवं मध्यम राज्य।[30] मनुस्मृति में राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्रों की कुल संख्या 12 मानी गई है। षाड्गुण्य नीति किसी राज्य द्वारा दूसरे राज्य के प्रति किसी विशिष्ट परिस्थिति में अपनाई जा सकने वाली नीति के विवेक–सम्मत विकल्पों का विवेचन करती है। मनुस्मृति में इसके अन्तर्गत छः गुणों का विवेचन किया गया है – सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी भाव एवं संश्रय।[31] मनुस्मृति में दूसरे राज्य को अपने पक्ष में करने के लिए उपायों का भी वर्णन किया है जो है – साम, दाम, दण्ड, भेद।[32]

मनु ने मनुस्मृति में पर–राष्ट्रों सम्बन्धों में दूत और गुप्तचर व्यवस्था को भी एक अहम स्थान दिया है। मनु का कहना है कि ''दूत ही शत्रु से मेल कर सकता है और शत्रुओं के बीच विग्रह करा सकता है।''[33] मनु दूतों की योग्यता के बारे में बताते हैं कि उसे शास्त्रों का ज्ञाता, इंगित आकार और चेष्टा को जानने की क्षमता, शुद्ध ह्रदय वाला, चातुर्य, कुलीन, व्यक्तित्व वाला हो साथ ही वह शत्रु राजा के प्रलोभन का शिकार न हो सके।[34] मनु के अनुसार गुप्तचर दूसरे राज्य की शक्ति एवं दुर्बलताओं तथा व्यवस्था आदि के बारे में जानकारी एकत्र कर अपने राजा तक पहुंचाता है। साथ ही वह अपने राज्य में रह रहे अन्य राज्य के गुप्तचरों का पता लगाकर अपने राजा को सूचित करे।

मनु ने पर–राष्ट्र सम्बन्धों में युद्ध का भी उल्लेख किया है। मनु ने अधर्मयुद्ध की तुलना में धर्मयुद्ध को उचित माना है। धर्मयुद्ध का अर्थ है कि युद्ध के नैतिक नियमों का पालन किया जाना, जैसे – निहत्थे पर वार नहीं करना, भागते शत्रु सैनिक का वध नहीं करना इत्यादि।[35] मनु ने पराजित राष्ट्र के प्रति विजेता राष्ट्र का व्यवहार के संदर्भ में बताया कि वह पराजित राष्ट्र के राजा एवं उसकी प्रजा के प्रति धर्मपूर्ण, नैतिक एवं उदार नीति अपनाये। मनु ने विजित राज्य के प्रशासन हेतु राज्य के प्रमुख व्यक्तियों की इच्छा जानकर पूर्व शासक के वंश के ही किसी व्यक्ति को राजा के पद पर नियुक्त करने को उचित माना है।[36] मनु ने कहा है कि विजित राज्य पर अपना शासन स्थायी बनाने के लिए राजा को वहाँ के व्यक्तियों के प्रति उदारता एवं सहिष्णुता का व्यवहार करना चाहिए जिससे वे शासन के कार्य में सहयोग प्रदान करने लगे।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनुस्मृति सम्पूर्ण जीवन का दर्शन है। इसे समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन कहना भी गलत नहीं होगा। मनुस्मृति राजा के आठ दैवीय गुण बताये गये, जिसे अष्टांग योग कहा गया है। राजधर्म का यह अष्टांग योग ही हमें अध्यात्म के 'अष्टांग योग' की सिद्धि करा सकता है। विश्व का लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब जनप्रतिनिधि या सरकार उपरोक्त शोध लेख में लिखित राजधर्म के आठ विशिष्ट गुणों से व्याप्त हो। मनुस्मृति का राजधर्म वर्तमान शासन–व्यवस्था में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मनुस्मृति शासक को निरंकुश और अराजक न बताकर लोकतांत्रिक बताया गया है जो हमेशा जनता के हित का कार्य करता है। मनुस्मृति में शासन व्यवस्था को विकेन्द्रीकृत बताया गया है। स्थानीय शासन की महत्ता और स्थानीय शासन के माध्यम से राजा पर नियंत्रण लगाया गया है, जिससे राजा अपने पथ से विचलित न हो। मनुस्मृति में विदित पर–राष्ट्र सम्बन्धों को वैदेशिक नीति के संदर्भ में देखें तो वह अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। अतः मनुस्मृति में राजधर्म से संबंधित विचार अत्यन्त ही प्रासांगिक है, साथ ही यह ग्रंथ राजनैतिक शिक्षण का उत्तम स्रोत है। मनु द्वारा प्रस्तुत न्यायिक प्रणाली, राजशास्त्र, विधि संहिता को युगों तक भारतीय समाज ने अपना आदर्श माना और स्थायित्व प्राप्त किया।

संदर्भ

1. प्रो0 बी.आर. मेहता, फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन पॉलिटिकल थॉट।
2. सुरेन्द्रनाथ सक्सेना, मनुस्मृति, मनोज पब्लिकेशन्स, 2010, सप्तम् अध्याय, श्लोक–4।
3. उपरोक्त, सप्तम अध्याय, श्लोक 3
4. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 303
5. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 304
6. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 305
7. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 306
8. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 307
9. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 308
10. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 309
11. उपरोक्त, नवम् अध्यय, श्लोक 310
12. उपरोक्त, अष्टम अध्याय, श्लोक 127
13. उपरोक्त, अष्टम अध्याय, श्लोक 128
14. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 307
15. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 293
16. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 295
17. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 296
18. उपरोक्त, सप्तम् अध्याय, श्लोक 110
19. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 100
20. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 99
21. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 129, 132, 137, 139

22. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 24
23. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 19, 22
24. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 55
25. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 54
26. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 27
27. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 18
28. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 28
29. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 121
30. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 156
31. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 160
32. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 161
33. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 66
34. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 67, 68
35. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 91, 92
36. उपरोक्त, नवम् अध्याय, श्लोक 202